P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-12*August- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

नाट्यकला व संगीत

सिम्मी
इंचार्ज,
डांस विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी,
पटियाला

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र नाट्यकला व संगीत जैसी प्रस्तुति कला (Performing Art) से सम्बन्धित है। नाट्यकला में किसी भी कहानी, विचार, मिथिहास आदि को अभिनय व संवादों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। संगीत नाट्यकला की ऐसी संचार विधि है जिससे सम्पूर्ण नाटकी माहौल को अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है। नाटक में संगीत सुर संयोजन व ताल संयोजन द्वारा संचारित किया जाता है। सुर संयोजन में नाटक में छिपे भावों को उनसे मेल खाते रागों द्वारा तथा ताल संयोजन में वाद्यों पर उन्हीं भावों से मेल खाती तालें बजा कर संचारित किया जाता है। कई बार विशेष ध्वनि प्रभावों (Sound-effects) द्वारा भी संगीत निर्देशक यथार्थ का भ्रम देते हैं। नाट्य में संगीत की उपयोगिता व प्रयोग का वर्णन तो नाट्यशास्त्र में भी वर्णित है।

मुख्य शब्द : नाट्य प्रदर्शन, संगीत, नाट्यशास्त्र।

प्रस्तावना

नाट्य प्रदर्शन में संगीत का प्रयोग सदियों से होता रहा है। निसंदेह संगीत नाटकीय संचार की विशेष व अहम संचार विधि है। संस्कृत नाटक की बिना संगीत तो कल्पना करना भी असंभव है। आज इलैक्ट्रोनिक वाद्यों (सिंथेसाइज़र, आक्टोपैड) आदि के आने से निसंदेह पांरम्परिक व शास्त्रीय वाद्यों का प्रयोग लगातार कम होता जा रहा है। रंगमंच का कलाकार कभी खुद ही गाता तथा वाद्य भी बजाता रहा है परन्तु आज गायक, वादक, अभिनेता 'तोर्यत्रिकम' प्रथा के 'भरत' न होकर पात्र विशेष बनकर रह गए हैं। आज शास्त्रीय वाद्यों का स्थान पाश्चात्य वाद्य व धुनें लेती जा रही हैं। कई भारतीय वाद्य तो लुप्त होने की कगार पर हैं।

आज फिर से भारतीय वाद्यों को रंगमंच पर लाकर इस प्रथा को बदला जा सकता है जिससे न केवल उन वाद्यों को उनकी गरिमा व पहचान मिलेगी बल्कि कई वाद्य–वादकों को रोज़ी–रोटी भी मिलेगी।

इस अध्ययन का लक्ष्य केवल इतना ही है कि नाट्यकला में संगीत के प्रयोग की महत्ता को समझा जाये और यथासंभव आवश्यकता अनुसार उसका सही प्रयोग किया जाये तांकि नाटक में छुपा हुआ संदेश दर्शकों तक और अधिक प्रभावशाली ढंग से पहुंच सके तथा दर्शकों का योग्य मनोरंजन हो सके। आज की जिंदगी भागदौड़ व थकान भरी होती जा रही है इस मशीनी जीवन यापन शैली में मनुष्य के पास बहुत कम समय बचता है अपना योग्य मनोरंजन करने के लिए और यही समय अगर वह नाट्य शैली जैसी कला को देखने को लगाता है तो संगीत का उसमें सही प्रयोग निसंदेह उसे नयी स्फूर्ति मानसिक शान्ति व माधुर्य प्रदान कर सकता है।

निसंदेह संगीत द्वारा संचार तथा उसके प्रभावों पर बहुत से शोधार्थियों ने विषयों में शोध–कार्य किये है तथा इसी तरह नाट्यकला द्वारा संचार पर भी शोध हुई है परन्तु एक ही समय में नाट्यकला में संगीत संयोजन, प्रयोग, प्रभाव व संचार पर कार्य कम हुआ है। अगर हुआ भी है तो नाट्यकला की शोध में संगीत एक अध्याय बनकर रहा है।

साहित्यावलोकन

सम्बन्धित शोध–पत्र नाट्य की कला व संगीत से सम्बन्धित है। निसंदेह दोनों ही विषयों पर अलग–अलग समय में शोध हुई है उनमें संगीत की नाट्य में विद्यमानता एक अध्याय के रूप में वर्णित भी हुई है। कई शोध कार्यों में भारतीय रंगमंच ही नहीं पश्चिमी रंगमंच पर नाटक में संगीत की विद्यमानता पर भी बात हुई है जैसे पंजाबी यूनिवर्सिटी में 2016 में किरनदीप कौर द्वारा पी.एच. डी. शोध प्रबन्ध में यूनानी रंगमंच पर भी लिखा गया है कि पारसी रंगमंच अथवा संस्कृत नाटकों की तरह यूनारी लोग Dionysus देवता के त्यौहार के समय नाटक खेलते व उसमें खुद नाटककार ही संगीतकार का कार्य करता था।

भारतीय नाट्य परम्परा में कालीदास के 'मालविकाठिनमिय' नाटक में संगीत तथा वाद्यों के प्रयोग का वर्णन 'संगीत' (पत्रिका–फरवरी, 2018) में विस्तृत रूप से किया गया है। इस शोध–पत्र में नाट्यशास्त्र में नाट्य था नाटकों में संगीत सहित अन्य शिल्पों का नाटक में प्रयोग भी वर्णित है। नाटकों में संगीत का दोनों पक्ष गायन व वादन का प्रयोग 'संगीत कला विहार' (पत्रिका, अक्टूबर, 2016) में भी बखूबी वर्णित है कि गुप्त काल में मर्दल आदि वाद्यों को कालिदास तथा आस के नाटकों में प्रयोग किया जाता रहा है। तीर्थ राम आजाद द्वारा लिखित 'कत्थक ज्ञानेश्वरी' में 'नाटयोत्पत्ति' अध्याय में भी नाट्य में संगीत के प्रयोग पर विस्तृत जानकारी दी है। अशोक कुमार नमन द्वारा लिखित 'संगीत रत्नावली' में 'मंच प्रदर्शन' की परम्परा' के अन्तर्गत भी नाट्यकला संगीत में में उपयोग का विस्तृत वर्णन मिलता है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध–पत्र में लेखिका ने नाट्यकला में संगीत के प्रयोग को विशेष तौर पर शोध का विषय बनाया है तांकि इसकी महत्ता को समझा जा सके व बदलते परिवेश में भी इसके प्रयोग के समय पश्चात्य प्रभाव, धुनें, वाद्यों आदि के प्रयोग की बजाय भारतीय वाद्यों का प्रयोग करके सही रस निष्पत्ति का दर्शकों को पान कराया जा सके।

किसी भी देश या समाज की संस्कृति का प्रतीक उसकी कलायें होती हैं। उन्हीं कलाओं से उस देश की सम्पूर्ण झलक, जिसमें वहां का रहन–सहन, आचार–व्यवहार, संस्कार, रीति–रिवाज़, सामाजिक जीवनयापन आदि का पता चलता है। परन्तु समय परिवर्तन के साथ यह बदलती भी रहती है। नाट्यकला तथा नृत्य प्रस्तुति कलाओं Performing Arts की श्रेणी में आती हैं। डा. उप्पल के बेनर्जी ने प्रस्तुति कलाओं की श्रेणी में चार कलाओं का वर्णन किया हैः– 1. संगीत, 2. नृत्य, 3. नाट्य, 4. फिल्म या मीडिया।[1] अशोक डी. रानाड़े ने तीन ही कलाओं संगीत, नृत्य तथा नाट्य को प्रस्तुति कलाओं की श्रेणी में माना है। नाटक कला को Composite Art या संयुक्त कला कहा जाता है।[2] संयुक्त कला में बहुत सी कलाओं का समन्वय होता है जैसे संगीत कला, नृत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, भवननिर्माण कला आदि। नाटक जैसी कला में संगीत प्रस्तुति के लिए वार्तालाप के साथ गायकी तथा वाद्य वादन द्वारा अंगों के भावपूर्ण संचालन द्वारा नाट्कीय संचार करता है। निसंदेह संगीत जैसी कला को उच्चतम कला की श्रेणी में माना गया है क्योंकि यह कला अपना प्रभाव मानवीय मन पर ही नहीं छोड़ती बल्कि आत्मा तक को भी तृप्त करती है। प्राचीन काल से ही नाट्य कला में संगीत का योगदान रहा है। वैष्णवमठ सदियो से नाट्य तथा संगीत द्वारा धार्मिक पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत करते रहे हैं। मंदिरों और मठों में देवी देवताओं के सम्मुख रोज गायन व नृत्य की प्रस्तुति की प्रथा भी रही है। काशी में शिव, अयोध्या में राम, मथुरा वृन्दावन में नाथद्वार और कांकरोली में कृष्ण मंदिर इस तरह की प्रस्तुति के केन्द्र बिन्दु रहे हैं व समाज में वैष्णव कीर्तन द्वारा भक्ति भावना का प्रचार होता रहा है। कुशीलव प्रथा जिसमें राम जीवन से कथानक को संगीतवद्ध व अभिनयपूर्ण नाट्कीय प्रस्तुति द्वारा आम लोगों तक संचारित किया जाता रहा है वह नाट्य कला व संगीत के समन्वय का अदृश्य उदाहरण है।

नाट्य से भाव नाटक है। साहित्य और अन्य कई कोमल कलाओं तथा अभिनय के सम्मिश्रण से इसकी उत्पति हुई है। नाट्य या नाटक वार्तालाप आधारित होता है उसके वाक्यों में अर्थों को अभिनय द्वारा प्रकट किया जाता है। अर्थ–अभिनय द्वारा जिस रस की उत्पति होती है वही रस भाव नाट्य होता हैं इसमें क्रोध, प्रेम, करूण, वीरता, ईर्ष्या, जुगुप्सा आदि अनेकों भावों को अंगों के विभिन्न संचालन द्वारा प्रकट किया जाता है।[3]

प्राचीन ग्रंथों में नाटक को 'रूपक' की संज्ञा दी गई है और उसके दस प्रकार माने गए हैं। अभिनवगुप्त के अनुसार जिस रचना में अर्थ (विचार–भाव) को अभिनय के द्वारा दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है उसे रूपक कहा जाता है। दशरूपक के लेखक धन्नजय ने 'रूप' अर्थात् दृश्य (देखने योग्य) होने के कारण इसे दशरूपक कहा है। नाट्यशास्त्र में यह दशरूपक इस प्रकार है– नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोम, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम तथा इहामृग।[4]

प्राचीन समय में नाटक कला एक अलग कला ना होकर नृत्य, नाट्य व संगीत तीनों का सुमेल हुआ करती थी। नाट्य जैसी कला में किसी कहानी, विचार (मिथिहास) का वर्णन अभिनय द्वारा किया जाता है। हर कथा साहित्य व अभिनय की कला का मिश्रण होती है। इसमें शब्दों द्वारा वाक्य व संवाद बनाए जाते हैं। शब्दों द्वारा ही गीतों की रचना की जाती है जो उस कथा कहानी या विचार को अभिनय द्वारा स्पष्ट करते हैं।

किसी भी नाटक प्रस्तुति में संगीत संचार की ऐसी पहुँच विधि (Communicative Approach) होता है जो नाटक के संपूर्ण कथानक में निहित भावनाओं को दर्शकों तक पहुंचाने का कार्य करता है। नाटक में बहुत सा संचार ऐसा होता है जो कई बार शब्दों द्वारा भी प्रगट करना मुश्किल होता है। ऐसी स्थिति में संगीत–निर्देशक ध्वनि के विभिन्न प्रभावों को प्रयोग करके उन्हें दर्शकों तक पहुंचाने का कार्य करता है।

बलवंत गार्गी ने अपनी पुस्तक रंगमंच में नाटक में विद्यमान संगीत की उपयोगिता के बारे में कहा है कि संगीत में एक वृतांतक गुण होता है तथा एक ऐसी भाषा होती है जो संपूर्ण कहानी को बता सकती है।[5] यही गुण या ध्येय नाटक प्रस्तुति का भी होता है इसलिए अगर संगीत को नाटक में प्रयोग किया जाए तो उसका प्रभाव दुगुना हो जाता है। नाटक की प्रस्तुति में संगीत के द्वारा हर प्रकार के भाव दुःख, सुख, विरह, खुशी, क्रोध, विलास, संगीत के सुरों और ध्वनियां के सुमेल से प्रगटाये जा सकते हैं। नाटक में संगीत के द्वारा संचार मुख्यतः निम्नलिखित पांच प्रकार की संगीत योजनाओं द्वारा किया जाता है [6] :–

1. गीतों तथा वाद्यों का प्रयोग करके।
2. किसी विशेष रस का प्रभाव बढ़ाने के लिए उसके साथ मेल खाते वाद्यों को नैपथ्य में बजाकर। इसे पार्श्व संगीत (Background Music) भी कहा जाता

है। इसका प्रयोग करुण और भयानक रस प्रधान नाटकीय दृश्यों में अधिक किया जाता है।

3. रंगमंच के पीछे किसी विशेष प्रभाव के लिए घंटा, घड़ियाल, शंख, नगाड़े आदि वाद्यों का प्रयोग करके।
4. रंगमंच पर ही गीत गाकर रंगपीठ के पात्रों को कोई सूचना देने या फिर विशेष प्रभाव डालने के लिए नैपथ्य में ही गीत गाकर जैसे 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में नैपथ्य में हंसपदिका गा रही होती है और विदूषक रंगपीठ पर कहता हैः–

भो त्यस्य! संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि।
कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते।

अर्थात् हे मित्रों संगीतशाला की तरफ ध्यान दो वहां अत्यंत सुरमय गीत सुनाई दे रहा है ऐसा लगता है हंसपदिका अभ्यास कर रही है।

5. रंगपीठ पर ही गाये जाने वाले गीत।

नाटक में विभिन्न मौकों पर गीतों द्वारा भी नाटकीय संचार में सहायता ली जाती हैः–

1. जब रंगमंच पर एक ही पात्र बैठ कर योग्य मनोरंजन के लिए गा रहा हो।
2. एक ही पात्र संगीत की शिक्षा ले रहा हो या सिखा रहा हो।
3. किसी भी खुशी अथवा त्यौहार आदि पर कलाकार इकट्ठे गा रहे हों।
4. कोई भी मांगलिक कार्य या किसी पूजा पाठ अथवा देवी देवताओं की आराधना का नाटकीय दृश्य जिसमें एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा गीत गाया जा रहा हो।
5. प्रेम मिलाप या वियोग में भी अपने प्रेमी की याद में गीत गाया जाता है।
6. चक्की चलाने, घरेलू कार्य या मेहनत के काम करते हुए थकान मिटाने के लिए गीत।
7. देवी देवताओं की पूजा अर्चना के भजन।
8. नाटक के आरम्भ का गीत जैसे मंगलाचरण अथवा नांदी पाठ।
9. किसी विशेष ऋतु से संबंधित गाया जाने वाला गीत।
10. भीख मांगते समय गाया जाने वाला गीत।
11. किसी काव्य से कथा–गीत गाना जैसे अल्हा आदि।
12. किसी युद्ध के दृश्य में सैनिकों को उत्साह देने के लिए गाया जाने वाला गीत।
13. दर्शकों को उपदेश देने हेतु गाया जाने वाला गीत जैसे संत, महात्मा आदि द्वारा गाये जाने वाले गीत।

नाटक में रौद्र, भयानक, विभत्स आदि रसों की प्रस्तुति के समय गीतों का प्रयोग नहीं किया जाता।[7]

नाटक में संगीत का प्रयोग दो प्रकार से होता हैः–

1. सुर संयोजन द्वारा
2. ताल संयोजन द्वारा

सुर संयोजन के लिए

नाटक में रसों और भावों के साथ मेल खाते रागों का प्रयोग होता है और ताल संयोजन में अलग–अलग वाद्यों पर तालों द्वारा ताल संयोजन का कार्य होता है।

नाटक में सुर संयोजन के लिए अलग–अलग रागों का प्रयोग रसों अनुसार किया जाता है जैसे श्रृंगार रस के संचार के लिए मालश्री, भैरवी, पंचम, मेघश्री, द्रविड़, गौढ़, गुर्जरी, सैंधवी आदि रागों का प्रयोग किया जाता है।

हास्य रस के लिए नाटक में कोशिकी, कामौदी, बंगाल राग तथा कामोद आदि रागों का प्रयोग किया जाता है।

करुण रस के संचार के लिए भैरव–रामकिरी, गुणगिरी पटमंजरी, सावेरी, कौशिकी, कामौदी, बंगाल, कामोद, सैंधवी, भूपति, देशी, आभिरी, गंधार तथा वीर रस के संचार के लिए धानश्री, द्राविड़गौढ़, तीड़ीका, संकराभरण, गौढ़ी, गोढ़ बल्लासिका, हर्षपूरी आदि रागों का प्रयोग किया जाता है। नाटक में किसी जीत के अवसर के समय श्री कंठिका छाया, तुरुषक गौढ़ मेघरंगी आदि रागों का प्रयोग किया जाता है।

विरक्ति के भाव के लिए भूपाली और देसी राग का प्रयोग किया जाता है। भयानक, वीभत्स और अद्भुत रस के लिए रागों का प्रयोग नहीं किया जाता केवल पुलन्दिता ऐसी रागिनी है जिसे सभी रसों के लिए गाया जाता है।[8]

नाटक में रागों के इलावा जिन वाद्य यंत्रों का प्रयोग ताल संयोजन के लिए किया जाता है वह वाद्य यंत्र भी नाटक में छिपे भावों अनुसार तालों द्वारा रसों की अभिव्यक्ति करते हैं। तबले के द्वारा अलग–अलग गतियां, युद्ध के दृश्य के लिए नगाड़ों की आवाज़, बादलों की गर्जन, घोड़े की पदचाप, युद्ध आदि के दृश्य में रणभेरी आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग तथा जल तरंग द्वारा झील अथवा नदी की निर्झरता दर्शायी जाती है।

नाटक में संगीत का प्रयोग इत्तफाकीय (Incidental) संगीत तथा नाटक के दृश्य बदलने के लिए भी किया जाता है। नाटक के वातावरण तथा पात्रों के भावुक बहाव को उभारने में संगीत विशेष भूमिका निभाता है।

ओपेरा संगीत या संगीत–नाटक (Musical Play) बिना संगीत संभव नहीं होता। ओपेरा अथवा संगीत नाटक में संगीत व नृत्य विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है जिसके लिए संगीत निर्देशकों को खास तौर पर बुलाया जाता है। संगीत की तरह नाटक में ध्वनि प्रभाव विशेष नाटकीय वातावरण बनाते हैं और यथार्थ का भ्रम देते हैं। हालांकि नाट्यशास्त्र जैसे आदि ग्रंथों में इस तरह के ध्वनि प्रभावों (Sound Effects) का वर्णन नहीं मिलता।[9]

आधुनिक समय में नाटकों में संगीतकार और संगीत निर्देशक विशेष रूप से नियुक्त किए जाते हैं। कई प्रकार की यथार्थ आवाजों के प्रभाव के लिए अलग–अलग प्रकार की सी.डी. का प्रयोग किया जाता हैं। आज बाजारों में अलग–अलग मूड के हिसाब से सीडियां भी मिलती हैं जिन्हें विशेष प्रभाव के लिए नाटकों में प्रयोग किया जाता है जैसे समुद्र की आवाज़, हवाई जहाज की आवाज़, तूफान की आवाज, मैडीटेशनल कैसटें, सीडियां व अलग–अलग रसों के लिए राग आधारित कैसटें व सी.डी। जिन्हें टेप रिकार्डर व सी.डी. प्लेयर व कम्पयूटर पर बजा कर नाटकीय संगीतमयी माहौल का सृजन किया

जाता है। कई बार नाटक के कलाकार अच्छे गायक भी होते हैं वह खुद ही रंगमंच पर गीतों को गाते हैं। वह भी नाटकीय आवश्यकतानुसार अधिक प्रभावशाली लगता है।

निष्कर्ष

नाट्यकला एक दृश्य काव्य या दिखत कला है जो प्रदर्शन द्वारा सीधे दर्शकों के मन को झिंझोर कर विशेष प्रभाव द्वारा उन्हें जागृत करने तक का कार्य कर सकती है। संगीत का मनुष्य पर प्रभाव सर्वविदित है। संगीत जैसी कला तो देवी–देवताओं को भी प्रसन्न करने की ताकत रखती है। संगीत का नाट्य जैसी कला में आवश्यकता अनुसार सही प्रयोग आज दर्शकों को न केवल सुकून देने का कार्य कर सकती है ब्लकि कर्णप्रिय संगीतमयी माहौल उन्हें कुछ समय के लिए किसी अलग दुनियां में ले जाकर विशेष आनन्द का आभास कराता है। नाटक का निर्देशक इस प्रयोजन के लिए संगीत निर्देशक को विशेष तौर पर नियुक्त करता है तांकि संगीत का सही प्रयोग करके दर्शकों को सरशार किया जा सके और नाट्यकला में निहित ध्येय को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Utpal K. Banerjee (1992), Indian Performing Arts, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, p. 3*
2. *Ashok D. Ranade (July-December, 1996), Sangeet Natak, Training in Voice and Speech on Indian approach, p.22.*
3. *गुरू विक्रम सिंह (1984), नटवरी (कथक) नृत्यमाला,राय ब्रिजेश्वर बली प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 23*
4. *डा. जी.एन. राजगुरू (1985), नाट्यशास्त्र (पंजाबी अनुवाद), पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पृ. 252*
5. *पं. सीताराम चर्तुवेदी (1964), भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ (यू.पी.), पृ. 681*
6. *लक्ष्मी नारायण गर्ग (1981), कथक नृत्य, संगीत कार्यलय, हाथरस, पृ. 194*
7. *अशोक कुमार यमन (2015), संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़/नई दिल्ली।*
8. *एल.पी. पित्ती, संगीत, जुलाई–2018, संगीत कार्यालय, हाथरस।*
9. *मंजुरंजना शर्मा, संगीत, जनवरी–2018, संगीत कार्यालय, हाथरस।*
10. *राजर्षी कुमार कसौघन, संगीत कला विहार, अक्तूबर–2016, अखिल भारतीय गंधर्व महाविद्यालय मण्डल, मुंबई।*

पाद टिप्पणी

1. *Indian Performing Arts, p. 3*
2. *Sangeet Natak (July-December, 1996), Training in Voice and Speech on Indian approach, p.22.*
3. *गुरू विक्रम सिंह, नटवरी (कथक) नृत्य (प्रथम पुष्प), पृ. 23*
4. *डा. जी.एन. राजगुरू, नाट्यशास्त्र (अनुवाद), पृ. 252*
5. *पृ. 242*
6. *पं. सीताराम चर्तुवेदी, भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ. 681*
7. *पं. सीताराम चतुर्वेदी, वही, पृ. 683*
8. *पं. सीताराम चतुर्वेदी, वही, पृ. 685, 686*
9. *लक्ष्मी नारायण गर्ग, कथक नृत्य, पृ. 194*